## चांदा में हुई गोष्ठियां

जब वो साधु समझा चुका, वो पंडित समझा चुका, तो उसने गिरि से पूछा- 'कहिए स्वामीजी, मेरी बातें कैसी लगीं?'

गिरी ने एक बात कही- 'बातें तो तुम्हारी सुनीं, लेकिन इसमे एक भी बात तुम्हारी नहीं थी।'

मेरी बात सुनिये। अभी भी सुन नहीं रहे ना? मैं क्या कह रहा हूँ आप वह सुन ही नहीं पा रहे।

इतनी कठिनता हो गई है, वहाँ भीतर इतना पढ़ा-पढ़ाया इकठ्ठा हो गया है, उससे पर्दा इतना घना हो गया है, कि मैं जो कह रहा हूँ वह सुन ही नहीं पा रहे। वह सुन लें तो पर्दा खुल जाये एकदम से।

सुनना जरा कठिन होता है, यह मैं जानता हूं। सुनना आसान बात नहीं है। सुनने की घटना कान से नहीं होती। उसके लिये व्यवस्था समझनी होती है।

गिरी ने पंडित से कहा था- 'आई एम वेटिंग फॉर यू। उस पंडित से कहा कि मैं आपको सुनने के लिए रुका हूं। ये जो आप बोले, इसमें कुछ भी आपका नहीं है।'

जो आपका नहीं है--उसे यूँ कहना कि मैं ऐसा सोचता हूँ, मैं ऐसा समझता हूँ, मेरा ऐसा विचार है; बड़ी भ्रांति है। न तो ये विचार मेरा है, न तो शब्द मेरा है। 'मेरा' आप जोड़े हुए हैं, बाकी सब उधार है। जो भी उधार है, उस पर ना तो आप आश्वस्त, ना आत्मविश्वस्त हैं। ना आपके भीतर उसकी कोई जड़ हैं। वह ऊपर से चिपकाया हुआ है। उस चिपकाये हुए में, मैं भी कोई उत्तर दे दूँगा, उसको भी आप चिपका ले सकते हैं। वो भी एक सजावट बन जाएगा। किसी और से पूछें, वो भी एक उत्तर दे देगा। जो भी आपको उत्तर देते जाएं, वे सब आपके दुश्मन हैं। वे आपके दिमाग में कचरा इकठ्ठा करते जायेंगे। उसी कचरे को आप बोलने लगेंगे, समझाने लगेंगे, लड़ने लगेंगे। और लड़ेंगे इसलिये नहीं कि आप जो जानते हैं वह सत्य है। लड़ाई इससे नहीं होती। लड़ाई इससे होती है कि जो मैं कहता हूँ वह असत्य कैसे हो सकता है? लड़ाई 'मैं' की है, मैं जो कह रहा हूँ इसकी है। 'मैं' को घना करते जायेंगे, इकठ्ठा करते जायेंगे, और आप पायेंगे कि जीवन भर लड़ते रहेंगे और कहीं भी नही पहुचेंगे। इसलिये आपकी बातों का कोई उत्तर नहीं दे रहा हूँ।

मैं सिर्फ यह समझाने की कोशिश कर रहा हूँ कि जो भी सत्य गीता, कुरान या बाईबल में उपलब्ध हुए हैं, ये सत्य विचार से उपलब्ध नहीं हुए हैं बल्कि ये सत्य अनुभूति से उपलब्ध हुए हैं। इसलिये आपको एक और विचार नहीं देता, बस आपको बताना चाहता हूँ कि अनुभूति कैसे की जाये? उसकी पद्धति की बात कर रहा हूँ। उस पद्धति के बाद जो भी आपको दिखेगा वह आपका होगा, उस दिन जो आपका होगा वह आपकी ग्रंथि को खोल देगा और हो सकता है, वह किसी और की ग्रंथि को खोलने में भी सहायक हो जाये। अभी तो जो विचार आपका नहीं है, वह आपकी ग्रंथि को और बढ़ायेगा। और दूसरे के दिमाग में डालकर उसका भी हम कचरा बढ़ाएंगे। अनुभूति पर कैसे पहुँचा जाता है, मैं यह आपको बता सकता हूँ। जो भी अनुभूति करेगा वह स्वयं ही उसे जानेगा। मैं यह नहीं कहता कि ईश्वर मिल जायेगा, या ईश्वर ऐसा होता है। मैं कुल इतना कहता हूँ कि ऐसे पहुँचा जाता है।

बुद्ध ने एक अंधे आदमी की कथा कही है। गाँव में एक अंधा आदमी था। उसके मित्र उसे समझाते थे कि प्रकाश है लेकिन समझ नहीं पाता था। वह हमेशा कहता कि प्रकाश की कोई सत्ता नहीं है। ना मैं छू सकता, ना वजन ले सकता, ना उसकी कोई आवाज सुनाई देती है। बुद्ध उस गाँव में गये थे, और किसी ने उन्हें कहा कि वह प्रकाश को मानने को राजी नहीं हैं। बुद्ध ने कहा तुम उसे मनाने गये, यह तुम्हारी गलती है। उसे विचार नहीं चाहिये, वैद्य चाहिये। उसकी आँख किसी को दिखाओ, आँख ठीक होने से तुम्हें समझाना नहीं पड़ेगा। वह जो पाएगा, उससे बदल जाऐगा। एक वैद्य को दिखाया गया। उसकी आँख पर एक जाली थी, वह कट गई। उसने जैसे ही आँख खोली, बोला कि मैं ही अंधा था। प्रकाश तो था।

इस अंधे को लाख दलीले दें, प्रकाश के बारे में समझाएं, तर्क दें और लाख कोशिश करें आखिर में तो वह पायेगा प्रकाश नहीं हैं। क्योंकि प्रकाश विचार से नहीं बल्कि आँख से पाया जाता है।

सत्य भी विचार से नहीं पाया जाता। उसकी भी आँख है, जो योग देता हैं। उस आँख को कैसे पाया जाये, ये बताया जा सकता है। उस आंख को पाने के बाद क्या होगा, उसे बताने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ेगी। जो भी आप देखेंगे वह आपकी गं्रथियों को खोल देगा। उसके पहले जो भी आप चिंतन या उधार विचार इकठ्ठे करेंगे, वह आपकी आँख पर जाली बना देगा, आँख नहीं खोलेगा; यह मेरा सोचने का दृष्टिकोण है। मैं नहीं कहता भगवान ने क्या कहा, उसका अर्थ क्या है? वह काम पंडित करते हैं। जो लोग अनुभूति पर पहुँचे हैं, मैं केवल उसका रास्ता बता सकता हूँ, जिससे हम भी पहुँच सकते हैं।

एक उपनिषद के ऋषि ने क्या कहा उसका अर्थ मैं नहीं बताता। मैं यह बताता हूँ कि चेतना की किस स्थिति में वह ऐसा कह सकता है। जिस चेतना की स्थिति में वह कह सका उस तक पहुँचने का मार्ग यह है। एक उपनिषद का ऋषि यदि कहता है 'अह्म ब्रह्मस्मि' इसका अर्थ मैं नहीं कहता। मैं यह कह सकता हूँ कि साधक किस स्थिति में कह सका 'अह्म ब्रह्मस्मि' और उस स्थिति में पहुँचने का मार्ग बता सकता हूँ। जो बोध उसको हुआ है, 'अह्म ब्रह्मस्मि' कहने के पूर्व वह आपको हो सकता है। और जिस दिन आपको होगा, उसका अर्थ खुलेगा। उसके पहले तो केवल शब्दों के अर्थ होते हैं। जिस दिन शांति के क्षण में आपको बोध होगा कि मैं तो मिट गया, जिस दिन आपको दिखेगा कि जो मेरे भीतर बैठा है वह चारों तरफ, सब पर्दों के पार, एक ही दिखने लगेगा। उस दिन आप कहेंगे कि इस भाव को शंकर ने कहा 'अहं ब्रह्मस्मि'। उस दर्शन से उस वाक्य का अर्थ होगा।

मनुष्य ने सत्य के संबध में जो भी विचार किये हैं, वह सब काल्पनिक हैं, मनोजन्य हैं, इसलिये सत्य तक नहीं ले जाते। जिसे हम विचार करना समझते हैं, वह विचार करना नहीं है, वह बहुत यांत्रिक है, तंद्रा मात्र है। ईश्वर के संबध में कहीं से कुछ सुन लेंगे, कहीं से कुछ पढें़गे, कहीं से कुछ इकठ्ठा कर लेंगे, वह सब विचार आपके मस्तिष्क में घूमने लगेंगे। उनमें एक भी विचार आपका अपना नहीं होगा। एक भी विचार आपकी अपनी अनुभूति नहीं होगी। सब उधार विचार आपके मस्तिष्क पर घेरा डाल देंगे। और निरंतर उसके संबध में सोचते-सोचते इस भ्रांति से भर सकते हैं कि आप ईश्वर को जानते हैं। ईश्वर शब्द के संबंध में कुछ जान लेने से ये भ्रांति हो सकती है कि आप ईश्वर को जानते हैं। आत्मा शब्द के संबंध में कुछ याद कर लेने से, स्मरण कर लेने से, कुछ विचार जो किसी ने कहा है, ये भ्रांति हो सकती है कि आप आत्मा के संबंध में कुछ जानते हैं। और ये भ्रांति कि आप जानते हैं, आपके ज्ञान के लिये संभवतः सबसे बड़ी बाधा बन जाती है।

जो नहीं जानता उसे स्पष्ट जानना चाहिये कि वह नहीं जानता। अगर शब्दों के भ्रम में वह पड़ता है तो शायद कभी भी वह नहीं जान पाएगा। एक बहुत बड़े दृष्टा ने यह कहा है कि मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ी एक ही बात जानने की है, कि स्पष्ट रूप से क्या वह जानता है और क्या नहीं जानता--यह सुनिश्चित रूप से जानना जरूरी है कि कितना मैं जानता हूं और कितना नहीं जानता हूं? और अगर आप भीतर इसे सुनिश्चित करते

जाएंगे तो पाएंगे कि धीरे-धीरे ना जानने वाली सीमा बढ़ती चली जाएगी। जानने वाली सीमा छोटी होती जाती है। जितनी आप की आंख पैनी होगी आप पाएंगे जो मैं नहीं जानता हूँ, वह बड़ा होता जा रहा है, जो मैं जानता हूँ, छोटा होता जा रहा है। और आपका विश्लेषण पूरा सही होता गया तो शायद आप पाएंगे कि जो आप जानते रहे--आपकी सोच अनुसार--वस्तुतः वह आप नहीं जानते। वह केवल शब्द थे जो आपको स्मरण हो गए थे। विचार थे दूसरों के जो आपके मस्तिष्क में गूंजने लगे थे। आपका अपना जाना हुआ कुछ भी नहीं था। जो व्यक्ति आत्म-विश्लेषण में लगेगा वह पाएगा उसका जानना सत्य के संबंध में कुछ भी नहीं है और जिन विचारों को भ्रांति से उसने ज्ञान समझा था वह ज्ञान नहीं था।

सत्य की ओर अपनी अज्ञानता को सुनिश्चित करना ही सबसे पहला कदम है। और जैसे ही सुनिश्चित कर लेते हैं यह समझ आ जाता है ज्ञान है ही नहीं। तभी इस अज्ञानता को तोड़ने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न होगी। एक कैदी को यह जानना जरूरी है कि वह कैद में है, तभी वह कैद से मुक्त होने पर विचार कर सकता है। तभी मुक्ति की संभावनाएं खुलेंगी।

अज्ञान का बोध ही ज्ञान का प्रारंभ है। यहां से जानने की शुरुआत होती है। दर्शन सबसे पहली बुनियादी रूप से अज्ञान का बोध देना चाहता है। यह बात विपरीत दिखती है लेकिन यही सत्य है। ईश्वर या सत्य के संबंध में कोई भ्रान्ति नहीं, कोई विचार नही देना चाहता; बल्कि इस भ्रान्ति को मैं तोड़ना चाहता हूँ, कि सुने हुए विचारों से कोई सत्य तक पहुंचता है। उल्टी है स्थिति। जितने विचार मन पर दौड़ने लगते हैं उतना मन अशांत, धूमिल और धुंधला हो जाता है। जितना पांडित्य का भार बढ़ने लगता है, शांति नष्ट होने लगती है, वह सरलता नष्ट होने लगती है जो जान सकती है। स्मृति घनी होने लगती है और स्मृति अतीत है, और वर्तमान से हम टूट जाते हैं। मन या तो अतीत के विषय में सोचता है या भविष्य की कल्पनायें करता है लेकिन वर्तमान में नहीं होता। और अगर हम वर्तमान में नहीं हैं तो सत्य और सत्ता से संयुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि अतीत और भविष्य की कोई सत्ता नहीं है। जिसकी सत्ता है, उससे हम विचारों की वजह से संबंधित नहीं हो पाते।

जो है, उससे अगर संबंधित होना है तो विचार छोड़ना पड़ते हैं। विचार मात्र अतीत या भविष्य का होता है वर्तमान का हो ही नहीं सकता। विचार शून्य जो होता है वह वर्तमान में होता है। अगर मैं आपको देख रहा हूं और मैंने सोचा कि मैं आपको देख रहा हूं तो बात अतीत की हो गई। जब मैं आपको सिर्फ देख रहा हूं और कुछ नहीं सोच रहा तो वर्तमान में हूं।

मनुष्य के जीवन के दुख का एक ही कारण है कि वह वर्तमान से संयुक्त नहीं है। सारे धर्म, सारे योग, सारे दर्शन आपको वर्तमान से संयुक्त करना चाहते हैं। उस संयुक्त होने पर जो बोध उपलब्ध होता है, जो अखंड सत्ता का दर्शन होता है, उस वर्तमान में जो सबके भीतर फैले हुए रूप की प्रतीति होती है, उस प्रतीति को ईश्वर का नाम दिया गया है। यह ईश्वर कोई नाम रटने की बात नहीं है, यह ईश्वर कोई आपके बैठकर भजन करने की बात नहीं है, यह ईश्वर कोई प्रार्थना करने की बात नहीं है। ईश्वर को कोई समझाकर, फुसलाकर या खुशामद करके नहीं पाया जा सकता। यह कोई व्यक्ति नहीं है जिसे आप समझा-बुझा लेंगे, जो आपके पाप और बुराई को दूर कर देगा। यह ईश्वर अखंड सत्ता के बोध का एक साकार नाम भर है, यह संज्ञा मात्र है जो मनुष्य ने उसे दे रखी है। फिर हम संज्ञा को पूजने लगते हैं। शब्द, पकड़ जाता है और शब्द की पूजा शुरू हो जाती है।

जहां-जहां ईश्वर की पूजा हो रही है, वहाँ शब्द की पूजा हो रही है। ईश्वर की पूजा नहीं हो सकती, ईश्वर को पाया जा सकता है। ईश्वर की प्रार्थना नहीं की जा सकती, ईश्वर में जिया जा सकता है। ईश्वर कोई व्यक्ति वाचक नहीं है, जिसके लिए हम कुछ करें और वह प्रसन्न होगा। ईश्वर से संबंधित नहीं हुआ जा सकता, ईश्वर में विसर्जित हुआ जा सकता है।

ईश्वर को पाया नहीं जा सकता, ईश्वर में जिया जा सकता है। ईश्वर से प्रार्थना नहीं की जा सकती, उसका ध्यान नहीं किया जा सकता, ईश्वर का स्मरण नहीं किया जा सकता। ईश्वर हो जाया जा सकता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि जैसे ही विषाद से मुक्त होकर मैं शांत हो जाउंगा, जिस अनुपात में मेरी शांति घनी होगी और शून्य घना होगा, जिस अनुपात में अतीत और भविष्य दूर हटने लगेंगे, जिस अनुपात में मेरी शांति वर्तमान में गहराने लगेगी, जिस क्षण में वर्तमान के केन्द्र पर जाकर खड़ा हो जाउंगा, उस क्षण मैं उससे संयुक्त हो जाता हूँ, जो है। उसके साथ एक हो जाता हूँ। उस क्षण यह ज्ञान होता है कि कल तक जिसे रजनीश की तरह जाना, अ, ब, स, की तरह जाना, वो मैं नहीं हूँ। उस क्षण ज्ञात होता है जिस खोल को मैंने 'मैं' समझा था, वो मैं नहीं हूँ। उस क्षण ज्ञान होता है जिस मन को मैंने 'मैं' समझा था, वो भी मैं नहीं हूँ। उस क्षण ज्ञात होता है, मैं तो कुछ हूँ जो सबमें व्याप्त है, जो सब में संयुक्त है। मैं तो कुछ हूँ जो अखण्ड रूप से सब में है। एक का बोध होना शुरू होता है और मैं विसर्जित होने लगता है।

'मैं' को विसर्जित करने की बहुत बातें कही गई हैं। शायद ही कोई साधु, संत, महात्मा ने ना कहा हो कि अंहकार को छोडें, 'मैं' को छोड़ें तो प्रभु उपलब्ध होता है। लेकिन हम अभी यह भी नहीं जानते कि 'मैं' है क्या? तो फिर छोड़ेंगे कैसे?

आपको यदि मैं कहूँ तो आप हैरान होंगे--'मै' अतीत के विचारों का इकठ्ठा नाम मात्र है।

एक बहुत प्राचीन बौद्ध साधु की कहानी है। भारत में जब सिकंदर आया उसके बाद कुछ समय यूनानी सेनापति भारत में राज्य करते रहे। उनमें निनांदर एक सेनापति था। वह भारत में राज्य करता रहा। निनांदर ने नागसेन साधू को अपने राजभवन में आमंत्रित किया। निनांदर स्वयं नागसेन भिक्षु को लेने द्वार पर गया। भिक्षु नागसेन को लेने रथ की व्यवस्था की गई थी। नागसेन रथ से उतरा, निनांदर ने भिक्षु को बाहर जाकर नमस्कार किया और कहा, 'भिक्षु नागसेन आराम से तो पहुंचे ना?'

नागसेन ने कहा, 'पहुँचा तो जरूर, लेकिन नागसेन जैसा यहाँ कोई है नहीं।'

निनांदर बोला, 'क्या कहते हैं? नागसेन कोई नहीं तो फिर आप कौन हैं?'

नागसेन ने कहा, 'मैं अभी रथ से उतरा, रथ है ना? लेकिन रथ का पहिया अलग कर लें, रथ के घोड़े अलग कर लें। न तो घोड़ा रथ है, न पहिया रथ है। और धुरी अलग कर लें और धुरी भी रथ नहीं और सब अंग अलग करते जायें, कोई अंग रथ नहीं। जब सब अंग अलग हो जाएंगे तो रथ बचेगा क्या?'

निनांदर बोला, 'रथ तो नहीं बचेगा।'

नागसेन ने कहा, 'ऐसे ही जो नागसेन का एक-एक हिस्सा अलग करता गया और एक दिन मैंने पाया कि नागसेन तो कहीं है ही नहीं। उस दिन मैंने पाया नागसेन मेरे सब इकठ्ठे अंगों के जोड़ का नाम था। वो कोई अलग नहीं है।'

मन के सारे विचार, अतीत के या भविष्य के इकठ्ठे होकर 'मैं' बन गये हैं। उनमें से एक-एक विचार विसर्जित होते जाएं और शांत होते जाएं तो आप पायेंगे कि मैं पिघलता जा रहा है। मैं धुँधला होता जा रहा है। और एक सीमा पर पायेंगे, मैं तो गया! अब आप ऐसी स्थिति में खड़े हैं कि 'मैं' नहीं है। जिस क्षण मैं नहीं है, उसी क्षण आप प्रभु है। उसी क्षण आप सत्य से संयुक्त हो गये। मनुष्य को उसका 'मैं' का विकास सत्य से दूर ले आया है। उसके मैं का विसर्जन सत्य में उसे वापस लौटा देता है। विचार के विसर्जित होने के साथ ही मैं विसर्जित हो जाता है। विचार प्रक्रिया का इकठ्ठा नाम मैं है। मन गया, मैं चला जाता है। मन के साथ मैं बंधा है। इसलिये कोई अगर मैं को छोड़ने की कोशिश करेगा तो नहीं कर सकता।

कोई पूछ सकता है कि मन के शांत होने पर मैं कहाँ चला जाता है? कलकत्ते में एक गोष्ठी में किसी ने पूछा, 'फिर मैं का क्या होगा?'

मैंने कहा, आकाश में जब बिजली चमकती है तो हम कहते हैं बिजली चमकी, फिर अगर कोई पूछे बिजली अगर चमकेगी नहीं तो बिजली कहाँ होगी, अब यह भाषा की भूल से दोहरे शब्द हम बना लेते हैं। असल में बिजली अलग और चमक अलग नही हैं, चमकना ही बिजली है। बिजली चमकी यह कहने से भ्रांति पैदा होती है कि बिजली कुछ और है, और चमकना कुछ और है। अगर चमकना गया तो बिजली भी चली जाती है। मन का होना और मैं का होना एक ही है। मन गया, मैं चला जाता है। एक-एक ईंट खिसकती जाती और मैं का भवन विसर्जित होता जाता है, इसी से सत्य पाया जाता है।

सत्य क्या है? इससे महत्वपूर्ण सवाल है कि सत्य के दर्शन कैसे हो सकते हैं? दर्शन की ठीक विधि और योग को यदि मैं समझ लूँ तो सत्य जो भी है वह प्रकट हो जाएगा। मुझे तय नहीं करना है कि सत्य क्या है? मैंने तय किया तो मैं सत्य को नहीं जान सकूँगा। जो मैं तय करूंगा उसको ही भला जान लूंगा! अगर मैंने तय किया कि सत्य कृष्ण जैसा है अथवा मैंने तय किया कि सत्य राम जैसा है। और अपनी कल्पना के अनुसार चलने की कोशिश की, तो शायद मैं अपनी मनोकल्पना के प्रक्षेपण को ही आरोपित कर देखूंगा। जो मन में धारणा बनाई शायद उसके दर्शन भी कर लूँ। लेकिन वो दर्शन सत्य का दर्शन नहीं है। जो व्यक्ति कोई भी मनोनिर्मित धारणा लेकर ईश्वर तक पहुंचेगा, वह अपनी मनोनिर्मित धारणा के ही दर्शन करेगा। वो सत्य के दर्शन नहीं कर सकता है। वह अपनी मनोनिर्मित धारणा के प्रक्षेपण के, प्रोजेक्शन के ही अनुभव करेगा, उसको ही पायेगा। सत्य को पाना हो तो सारी मनोनिर्मित धारणा को अलग छोड़ देना होगा और मुझे इतना शांत होना होगा, अपनी तरफ से कोई भी धारणा, कोई भी प्रत्यय ना ले जाकर जो सत्य हो, जैसा हो उसे प्रकट होने देना होगा।

सत्य को पाना नहीं है, उसे प्रकट होने देना है। उनमें बहुत अंतर है।

अभी एक जगह एक युवक मुझे मिले थे, बोले कि मैं 3 वर्ष हिमालय रहकर लौटा हूँ। 3 वर्ष तक मैंने गंगोत्री के किनारे साधुओं की तलाश की इस आशा में कि कोई मुझे प्रभु के दर्शन करा दे। वे विज्ञान के स्नातक हैं, बनारस यूनिवर्सिटी से प्रथम श्रेणी के एम.एससी. के स्नातक हैं। मैंने उनसे कहा जो ईश्वर को खोजने जाता है वह कभी नहीं पा सकता। खोजने में ही अंहकार छिपा हुआ है। खोज में ही 'मैं पा लूँ' यह भाव छिपा हुआ है। जैसे कोई धन को खोजता है, यश को खोजता है, ऐसे कोई प्रभु को और सत्य को नहीं खोज सकता। सत्य को मैं अपनी संपत्ति नहीं बना सकता। ईश्वर मेरी संपत्ति नहीं हो सकता है। यह खोज ही नासमझी की है।

वह मुझसे पूछे, फिर क्या करें?

मैंने कहा ईश्वर को खोजना नहीं होता, अपने को खोना होता है। जो अपने को खोता जाता है विसर्जित करता जाता है, जिस दिन पूरा खो जाता है, वही पा लेना है। जिन खोजा तिन पाइयां, पंक्ति गलत है और भ्रांत है। जो खोजेगा वह नहीं पा सकता है, उल्टा वह खो देगा। क्योंकि खोज अंहकारजन्य है, खोज में मेरा व्यक्तित्व बना हुआ है। मैं एक व्यक्ति की हैसियत से खोजने निकला हूँ। मैं एक क्षुद्र की हैसियत से विराट को पाने निकला हूँ, मैं कहाँ उसे रखूंगा, संभालूंगा? क्षुद्र केवल क्षुद्र को खोज सकता है, क्षुद्र विराट को नहीं खोज सकता।

तो इसके क्या मायने हुए--क्या क्षुद्र विराट को नहीं पा सकेगा?

क्षुद्र विराट को निश्चित पा सकता है, खोज नहीं सकता। क्षुद्र विराट को अपनी क्षुद्रता खोकर पा सकता है। जिस दिन अपनी क्षुद्रता को विसर्जित करता है, उसी दिन पाता है मैं तो विराट था ही। इसलिये मैं कहता हूँ 'जिन खोइया तिन पाइयां।' जो अपने को खो देते हें वो पा लेते हैं। धर्म पाने का विज्ञान नहीं है। धर्म खोने का विज्ञान है, विसर्जित करने का विज्ञान है, धर्म मिटने का विज्ञान है।

ईसा ने कहा है, मेरा धर्म एक तलवार की तरह है। इस पंक्ति को सबसे कम समझा गया है। इसका मायना, इसका अर्थ क्या है? कोई छोड़ देगा, तोड़ देगा और मिटा देगा? जो जीवन को खोएगा वह जीवन को पा लेता है। इसलिये क्रॉस ईसाईयों का चिह्न बन गया है, वह मृत्यु का चिह्न है।

बंगाल में एक साधु था। पश्चिम के एक विचारक सिंमांस रूस, भारत घूमने आये और भारत में उस बंगाल के बाऊल साधु से मिले और पूछा धर्म क्या है? उस साधु ने कहा, मृत्यु। सिंमांस रूस घबरा गया, दुबारा पूछने पर भी साधु ने वही उत्तर दिया। सिंमांस रूस हैरान हुआ कि यह साधु क्या कहता है! साधु हँसने लगा और कहा हैरानी होती होगी जरूर, लेकिन धर्म मरने की ही प्रक्रिया है। 'उस' के मरने की--जो भ्रांति है, 'उस' को विसर्जित कर देने की--जो गलत है, उसको विसर्जित कर देने की--जो नहीं है और काल्पनिक है। जो भ्रांत और मिथ्या मेरे साथ संयुक्त है, अगर वह नहीं मरता तो मैं उस तक नहीं पहुँच सकता जो है और वास्तविक है। मेरा 'मैं' बिल्कुल भ्रांत और काल्पनिक इकाई है, जो वस्तुतः कहीं है नहीं। और आज तक जो भी शांत हुए उन्होंने उसे पाया नहीं। वो मेरा भ्रांत व्यक्तित्व, मेरी इगो, मेरे और सत्य के बीच बाधा है। उसकी मृत्यु जरूरी है।

धर्म मृत्यु है--इस अर्थ में कि वह आपको तोड़ देगा, मिटा देगा। और जिस अंहकार से जीवन में आप उसे खोजने निकले थे, उस अंहकार को मिट्टी कर देगा। मनुष्य यही भूल कर जाता है। वह जीवन भर धन खोजता है, यश खोजता है, प्रतिष्ठा खोजता है। फिर इस खोज में वह अतृप्त हो जाता है और ईश्वर को खोजने लगता है। वो सोचता है, जैसे मैंने और चीज़ें खोजीं वैसे ईश्वर को भी खोज लूँगा, सत्य को भी खोज लूँगा यह उसकी तर्कशरणी है। वह खोज की इस श्रृंखला में, सत्य को भी एक कड़ी बना लेता है। सत्य खोज की श्रृंखला की कड़ी नहीं है। जहाँ खोज है, वहाँ वासना है। जहाँ खोज है, वहाँ आकांक्षा है। जहाँ खोज है, वहाँ अंहकार तृप्त होने की कोशिश में लगा है। इसलिये सत्य, खोज की कड़ी नहीं है। सत्य उस दिन उपलब्ध हो जाता है जिस दिन खोज बंद हो जाती है। यह कुछ अजीब सा लगेगा, खोज गई मतलब वासना गई। अंहकार ने दौड़ छोड दी, पाने का तनाव, प्रयास, अशांति गई। जैसे ही यह सब गया उसे पा लिया जाता है, जो है। तो स्वयं को विसर्जित करने से सब पा लिया जाता है।

भारत की पूरी की पूरी पंरपराएं, पश्चिम की भी वास्तविक धर्म की पंरपराएं, खोजने की नहीं, खोने की हैं, मिटा देने की हैं। मिथ्या की मृत्यु हो ताकि वास्तविक का उदय हो सके।